साक्षात्कार

बच्चों को चीज़ों को तोड़ने की आज़ादी दो- इस तरह वे सीखेंगे: खिलौना खोजी अरविन्द गुप्ता

आईआईटी प्रशिक्षित इंजीनियर अरविन्द गुप्ता को शिक्षा में उनके योगदान के लिए इस वर्ष पद्मश्री से सम्मानित किया गया है.

अरविन्द गुप्ता ने माचिस की तीलियों के साथ एक सफ़र शुरू किया. तीलियों और साइकिल वाल्व टियूब के सहारे उन्होंने आकारों की रचना की और फिर जटिल मॉडल बनाए. यह 1978 की बात है. चार दशक बाद कबाड़ जैसी मामूली चीज़ों को हजारों शैक्षिक खिलौनों में बदल डालने के हुनर ने उन्हें भारत सरकार द्वारा दिए जाने वाले देश के सर्वोच्च नागरिक सम्मानों में एक- पद्मश्री सम्मान दिलाया.

अरविन्द गुप्ता ने आईआईटी कानपुर से इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई की और फिर एक ऑटोमोबाइल कंपनी में नौकरी करने लगे. दो साल बाद वह एक साल की छुट्टी लेकर मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले के बनखेड़ी ब्लाक में चल रहे एक शैक्षिक कार्यक्रम में हिस्सा लेने पहुंचे. यहां उन्हें स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री से शैक्षिक सामग्री तैयार करनी थी. गाँव के बाज़ार में उन्हें साइकिल टायर में लगने वाले रबर वाल्व की 10 फीट लम्बी ट्यूब मिल गयी. जब उन्हें पता चला कि यह पतली सी रबर ट्यूब माचिस की तीलियों में बहुत अच्छे से फिट हो जाती है तो एक अनमोल तरकीब उनके हाथ लग गयी. इसकी मदद से वे तीलियों के बीच मनचाहे जोड़ डाल सकते थे. फिर क्या था- ग़रीब से ग़रीब बच्चे भी उनकी इस जादुई तरकीब से विज्ञान सिखाने वाले मॉडल जोड़ और तोड़ सकते थे. इस तरह पैदा हुए उनके "माचिस के मॉडल".

बीते 40 वर्षों में अरविन्द गुप्ता के माचिस के मॉडलों और "कबाड़ के खिलौनों" ने साबित कर दिया कि बहुत कम संसाधनों में भी सीखने की प्रक्रिया को आनंददाई बनाया जा सकता है. इस विषय पर उन्होंने दर्जनों किताबें लिख डालीं. एक हजार से ज्यादा निर्देशात्मक वीडिओ बनाए और स्कूली बच्चों के बीच 3000 से ज्यादा कार्यशालाएं कीं. अकसर वह बाल विज्ञान मेलों में शरीक होते थे और 2011 में उन्होंने अपनी चर्चित टेड टॉक दी, जो विचारणीय विषयों का प्रसार करने वाला एक गैर-व्यावसायिक प्रयास है. जिस दिन पद्मश्री सम्मान की घोषणा हुई, उससे चंद दिन पहले उन्हें नरेन्द्र दाभोलकर स्मृति सम्मान से नवाज़ा गया था. यह सम्मान उन्हें 2013 में मारे गए चर्चित तर्कवादी विद्वान नरेन्द्र दाभोलकर के नाम से महाराष्ट्र फाउंडेशन की ओर से 13 जनवरी को दिया गया.

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम, जहां अरविन्द गुप्ता ने अपने हुनर को सान चढ़ाई, देश में विज्ञान शिक्षा का अब तक का सबसे प्रगतिशील प्रयोग माना जाता है. बच्चों में उत्सुकता और रुचि जगाकर सरकारी स्कूलों में विज्ञान शिक्षण में सुधार को लक्षित इस कार्यक्रम ने शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के अलावा कई पुस्तकें प्रकाशित कीं और साइंस किट तैयार किये. 2002 में इस कार्यक्रम को मध्य प्रदेश की कांग्रेस-नीत सरकार ने बंद करने का फरमान सुनाया. भारतीय जनता पार्टी तो शुरू से ही इसके खिलाफ थी. लेकिन राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 और शिक्षा का अधिकार कानून 2009 सहित देश के लगभग सभी प्रगतिशील शिक्षा सुधारों में इसके प्रभाव की झलक देखी जा सकती है.

एक साल बाद 1978 में अरविन्द गुप्ता ने होशंगाबाद छोड़ दिया लेकिन वे इस कार्यक्रम के लिए लगातार काम करते रहे. 2003 से दिसंबर 2014 में अपनी सेवानिवृत्ति तक वह पुणे में इंटर यूनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोफिज़िक्स के बाल विज्ञान केंद्र के प्रभारी रहे. वहां रहकर उन्होंने अपनी तमाम किताबों और वीडिओज का ऑनलाइन संग्रह तैयार किया.

अरविन्द गुप्ता ने स्क्रॉल.इन से इस बातचीत में बताया कि किस प्रकार उन्हें 60 के दशक के छात्र आंदोलनों से प्रेरणा मिली. उनके संस्थान में भाषण देने पहुंचे तेजतर्रार शिक्षा कार्यकर्त्ता अनिल सद्गोपाल की बातों ने कैसे उन्हें प्रभावित किया और कैसे उन्होंने कबाड़ से विज्ञान के खिलौनों की दुनिया रची.

अकसर आप कहते हैं, "किसी खिलौने के साथ सबसे अच्छी बात कोई बच्चा यही कर सकता है कि वह उसे तोड़ डाले." आपकी इस उक्ति का क्या मतलब है?

जोड़-तोड़ करना सभी बच्चों का जन्मजात स्वभाव है. वे चीज़ें जोड़ना चाहते हैं, तोड़ना चाहते हैं. बच्चे खिलौनों को क्यों तोड़ते हैं? क्योंकि हमारे बीच अकेले उन्हीं में उत्सुकता बची है. वे उन्हें खोलकर देखना चाहते हैं कि इनके भीतर क्या छुपा हुआ है और उन्हें फिर से कैसे जोड़ा जा सकता है. बच्चों को तोड़ने की आज़ादी दीजिये अन्यथा वे सीख नहीं पायेंगे कि चीज़ें कैसे काम करती हैं. उन्हें प्रकृति के नियमों का ज्ञान कैसे होगा?

आपने 1960 और 1970 दशक के राजनीतिक आंदोलनों के आप पर पड़े प्रभाव के बारे में कहा है. आपके जीवन और काम पर उन आंदोलनों का कैसा प्रभाव पड़ा?

मैं 1970 से 1975 तक आईआईटी कानपुर में था. 1968 में पेरिस की सड़कें छात्र आन्दोलन के नारों से गूँज रही थीं. वह बड़ा क्रांतिकारी दौर था. देश के बाहर महिला अधिकार, नागरिक आधिकार और पर्यावरण से जुड़े आन्दोलनों की धमक थी. भारत में नक्सलबाड़ी आन्दोलन चल रहा था और उसके बाद जयप्रकाश नारायण का आन्दोलन शुरू हुआ. समाज में जबरदस्त उथल-पुथल मची हुई थी. यह एक राजनीतिक उथल-पुथल थी, जिससे ढेर सारी ऊर्जा बाहर निकली.

इसके अलावा दूसरे विश्वयुद्ध को 20 वर्ष बीत चुके थे और कई वैज्ञानिक समाज में अपनी भूमिका के बारे में सोच रहे थे. कईयों ने तय किया कि इंसानों की मार-काट से उनका कोई लेना देना नहीं है और वे बम व मिसाइल नहीं बनाएंगे.

ऐसे ही एक वैज्ञानिक थे अनिल सद्गोपाल, जो कैलिफोर्निया इंस्टीटयूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी से पीएच.डी. पूरी कर टाटा इंस्टीटयूट ऑफ़ फंडामेंटल रिसर्च में आये थे. जल्दी ही उन्होंने यह नौकरी छोड़ दी और 1970 दशक में होशंगाबाद के बनखेड़ी में भारत की शुरूआती स्वयंसेवी संस्थाओं में एक किशोर भारती की स्थापना की. यहां उन्होंने देखा कि स्कूलों में विज्ञान प्रयोगशालाएं नहीं हैं. बच्चे बिना अपने हाथ गंदे किये पुस्तकों से रट्टा मारकर अगली कक्षा में पहुंच जाते थे. यह विज्ञान सीखने का बड़ा नुकसानदेह तरीका था. प्रो. यशपाल 1972 में बतौर एक शिक्षक प्रशिक्षक यहां पहुंचे और उन्होंने 40 शिक्षकों के लिए 15 दिन का एक प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया. इस तरह होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की शुरुआत हुई.

आप इस कार्यक्रम से कैसे जुड़े?

आईआईटी कानपुर में अपने दूसरे या तीसरे वर्ष में मुझे अनिल सद्गोपाल को सुनने का मौका मिला. उनके भाषण का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा. अगर मैंने उन्हें नहीं सुना होता, तो संभव है कि मैं किसी बड़े कॉर्पोरेशन या अमेरिका में नौकरी कर रहा होता.

सद्गोपाल ने बताया कि उनकी संस्था वहां (होशंगाबाद) कई साल से काम कर रही है और वह चुनौती बहुत कठिन है. गांवों में लोग अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजना चाहते क्योंकि वे सस्ते श्रमिक साबित होते हैं. यह इतनी ईमानदार स्वीकारोक्ति थी कि इसने मुझे भीतर तक हिला दिया. उन्होंने कहा कि बहुत प्रयत्न करने के बावजूद वह कोई ख़ास बदलाव नहीं ला पाए हैं.

मैंने अपने डिग्री पूरी की और टेल्को (आज की टाटा मोटर्स) में नौकरी शुरू की. पहले दो साल शानदार बीते मगर उसके बाद चीज़ें उबाऊ होने लगीं. 1978 में मैं एक साल की छुट्टी लेकर बनखेड़ी चला आया. राज्य सरकार ने भी विज्ञान को बेहतर ढंग से पढ़ाने की संभावना को देखने के लिए 16 स्कूलों में पांच साल के लिए इस कार्यक्रम को चलाने की अनुमति दे दी.

मैं जोड़-तोड़ में यकीन करता हूं और तरह-तरह की चीज़ें मुझे अपनी ओर खींचती हैं. पहले महीने में मैंने सिर्फ माचिस के मॉडल बनाए. आप इसे घर के बने मेक्कानो सेट जैसा समझ सकते हैं. आप चाहें तो इससे घर बना सकते हैं या फिर आणविक संरचना तैयार कर सकते हैं. मैंने सोचा, "यह ट्रक बनाने से तो अच्छा ही है."

क्या आप हमेशा से जोड़-तोड़ पसंद करते थे?

हां, हमेशा से. मेरे माता-पिता पढ़े-लिखे नहीं थे लेकिन मेरी मां बहुत पढ़े-लिखे परिवार से थीं. उनके भाइयों ने ऊंची शिक्षा हासिल की थी और वह शिक्षा का मूल्य समझती थीं. मैं चार भाई-बहिनों में सबसे छोटा था और उन्होंने हम चारों का बरेली के सबसे अच्छे कान्वेंट में दाखिला करवाया था. हम महंगे खिलौने नहीं खरीद सकते थे, इसलिए हम हमेशा जोड़-तोड़ में लगे रहते थे. माचिस व सिगरेट के डब्बे, बटन और जूता पालिश की डिबिया जैसी जाने कितनी चीज़ें हमारे खिलौनों का कच्चा माल बन जाती थीं. एक धनी रिश्तेदार ने एक बार उपहार में मुझे मेक्कानो सेट दिया था और मैं बरसों तक इससे खेलता रहा.

आईआईटी में मैंने अपने एक दोस्त की पहल पर एरो-मॉडलिंग क्लब की स्थापना की. हम छोटे-छोटे इंजनों की मरम्मत किया करते थे. इस कवायद में मैंने अपने दोस्त से बहुत कुछ सीखा क्योंकि वह मेरी तुलना में कहीं ज्यादा हुनरमंद था.

होशंगाबाद में छः महीने बिताने के बाद मैं तिरुअनंतपुरम चला आया. अपनी पढ़ाई के दौरान मैंने लौरी बेकर के बारे में पढ़ा था. मैंने सोचा यह एक ऐसा इंसान है जिसने गरीबों की ज़िन्दगी को छुआ है. मैंने उन्हें अपने बनाए माचिस के मॉडल दिए और उनके साथ कुछ महीने काम करने की इजाज़त मांगी. इसके बाद मैं टेल्को में वापस लौट आया और कुछ और वर्षों तक नौकरी करता रहा. लेकिन इस एक साल के सफ़र ने मेरे समाने कई सवाल खड़े कर दिए और आखिरकार मैंने नौकरी छोड़ दी.

ये किस तरह के सवाल थे?

हम लोग गांधी और मार्क्स के विचारों के संपर्क में आये. हमने वे सारे बुनियादी सवाल पूछे जो किसी भी संवेदनशील आदमी को परेशान करते हैं. हमारे चारों ओर इतनी गरीबी क्यों है? जो लोग शारीरिक श्रम करते हैं उन्हें भरपेट भोजन क्यों नहीं मिल पाता? समाज में इतनी असमानता क्यों है?

मैंने कुछ अन्य संगठनों के साथ काम किया लेकिन 1984 में बेटी के जन्म के बाद हम पुणे वापस लौट आये. मैंने प्रो. यशपाल को पत्र लिखा. वह तब विज्ञान एवं तकनीकी विभाग में सचिव थे. उन्होंने मुझे मेरी पहली किताब 'माचिस के मॉडल और विज्ञान के अन्य प्रयोग' लिखने के लिए फैलोशिप दिलवाई. यह किताब 1987 में छपी. मात्र दो-तीन साल के भीतर यह भारत की 12 भाषाओं में छप गयी.

मैंने जब टेल्को की नौकरी छोड़ी तो मेरे मामा, जो ऊंचे पद पर थे, बहुत नाराज हुए. लेकिन मेरी मां ने कहा, "अच्छा किया नौकरी छोड़ दी, अब कुछ नेक काम करेगा." उनका यह कथन आने वाले सालों में मुझे प्रेरणा देता रहा.

एकलव्य के साथ आपने क्या काम किया? यही वह संस्था थी, जिसने आखिरकार होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम का संचालन किया.

एकलव्य की स्थापना 1983-84 में हुई और इसने मेरी कई किताबें प्रकाशित कीं. मैं लगातार लिख रहा था. 1990 में हम दिल्ली आ गए. मैं स्वतंत्र रूप से किताबें लिखता था, दूरदर्शन के लिए फ़िल्में बनाता था और वर्कशॉप आयोजित करता था. बेटी की 12वीं कक्षा की पढ़ाई पूरी होने तक हम पूरे 14 साल दिल्ली में रहे. जब वह मेडिकल की पढ़ाई करने वेल्लौर गयी तो 2003 में हम पुणे वापस लौट आये.

क्या इसी दौर में आपने अपनी वेबसाइट बनाकर वीडिओ पोस्ट करने शुरू कर दिए थे?

जैसे ही मैं पुणे पहुंचा, जाने-माने खगोलविद प्रो. जयंत नारलिकर ने मुझे इंटर-यूनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रो-फिजिक्स के बाल विज्ञान केंद्र में काम करने का न्योता दिया. उन्होंने बच्चों के लिए मराठी में ढेर सारी पुस्तकें लिखी हैं और उनका सपना था कि इंस्टीटयूट में बच्चों के लिए एक छोटा सा केंद्र हो ताकि बचपन से ही उनके भीतर विज्ञान के प्रति प्रेम जागृत किया जा सके. मैंने पूरे 11 साल यहां काम किया और एक शानदार टीम तैयार हुई. इन 11 सालों में मेरे साथ विदुला म्हैसकर रहीं, जिन्होंने स्टेनफोर्ड विश्विद्यालय में मॉलिक्यूलर बायोलॉजिस्ट के तौर पर चार साल पोस्ट डॉक्टोरल रिसर्च करने के बाद इस केंद्र को चुना. इसके बाद अन्ना हजारे के गांव रालेगांव सिद्धि के पास के अशोक रूपनेर भी हमारे साथ जुटे. हमने मिलकर कबाड़ की मदद से 1500 से ज्यादा खिलौने बनाए- हम इन्हें विज्ञान के प्रयोग नहीं कहते. इनमें 110 खिलौने प्लास्टिक की बोतलों की मदद से बने हैं, 60 पेय के डब्बों से. आप तमाम किस्म के आधुनिक कबाड़ को हैरतअंगेज खिलौनों में बदल सकते हैं, जो चलते, उड़ते या फिर आवाज पैदा कर सकते हैं. हमारी वेबसाइट में इन्हें बनाने के सचित्र निर्देश उपलब्ध हैं.

हम अब तक 8,600 से ज्यादा वीडिओ यू ट्यूब में डाल चुके हैं. ये अंग्रेजी, मराठी व हिंदी सहित 18-20 अन्य भाषाओं में हैं. इन्हें चाहने वालों ने 100 से ज्यादा वीडिओ को चीनी और 300 से ज्यादा को स्पेनिश भाषा में डब किया है.

हिंदी में ये वीडिओ मेरी और मराठी में म्हैसकर की आवाज में हैं. पीके नानावती, जिन्होंने नरेन्द्र दाभोलकर के साथ भी काम किया था, 1000 वीडियो को कन्नड़ में तैयार कर चुके हैं.

इनके अलावा वेबसाइट में हिंदी, मराठी व अंग्रेजी में 5000 से ज्याद महत्वपूर्ण किताबें उपलब्ध हैं, जो शिक्षा, पर्यावरण, युद्ध विरोधी साहित्य, विज्ञान, गणित आदि विषयों पर लिखी गयी हैं.

कक्षाओं में डिजिटल बोर्ड और ई-कंटेंट आदि टेक्नोलॉजी के माध्यम से किए जा रहे नवाचार को आप कैसे देखते हैं? ख़ास तौर पर सरकार की ओर से की जा रही इस तरह की पहल को?

डिजिटाइजेशन के नाम पर अब तक ज्यादातर पाठ्यपुस्तकों को स्कैन करके ही पेश किया जा रहा है. यह कतई रचनात्मक नहीं बल्कि एक तरह से बकवास है. लोग दिमाग़ का ज़रा भी इस्तेमाल नहीं करते. इसके विपरीत हमने विज्ञान की परम्परागत श्रेणियों में हर विषय पर खिलौने बनाए हैं. उदाहरण के लिए ध्वनि पर हमने 50 खिलौने बनाए हैं. शिक्षक और बच्चे इनमें से अपने स्तर और ज़रूरत के अनुसार खिलौने चुन सकते हैं. हमें अपने कचरे के डिब्बे में भी झांकना चाहिए. इसमें पड़ी सामग्री का बच्चों के लिए बड़ा महत्त्व हो सकता है और इन्हें गरीब से गरीब बच्चों तक पहुंचाया जा सकता है. यह नवाचार का बहुत महत्वपूर्ण हिस्सा है.

लेकिन मौजूदा सरकार की एक पहल बड़े महत्त्व की है- अटल जोड़-तोड़ प्रयोगशाला. ये प्रयोगशालाएं पाठ्यक्रम आधारित नहीं है और उनका उद्देश्य बच्चों को अपने हाथों से तमाम तरह की चीज़ें बनाने का मौका देना है. अगर बच्चे असफल होते हैं तो वे अपने गलतियां सुधारकर सफलता हासिल कर सकते हैं.

होशंगाबाद के बाद आपने कई शिक्षाविदों के साथ काम किया, जिन्होंने शिक्षा नीतियों के निर्माण में योगदान दिया और सरकार के सलाहकार रहे.

मैं आज ही अनिल सद्गोपाल को लिखा. प्रो. यशपाल ने मुझे अपनी पहली किताब तैयार करने के लिए फ़ेलोशिप दिलवाई. बाद में 2005 में वह राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा तैयार करने वाली समिति के अध्यक्ष बने. एकलव्य के सह-संस्थापक विनोद रैना मेरे प्रकाशक थे. बाद में हमने भारत ज्ञान विज्ञान समिति में मिलकर काम किया. रैना इस संस्था के भी सह-संस्थापक थे और इसके लिए मैंने 100 पुस्तकों की एक शृंखला तैयार की. बाद में उन्होंने शिक्षा के अधिकार के लिए भी काम किया. विनोद के साथ मेरी लंबी साझेदारी रही.

क्या आप इस बात से निराश हैं कि ऐसे कई महत्वपूर्ण प्रयासों को अब उलटा जा रहा है?

मेरे ख़याल से यह बहुत चिंताजनक बात है. लेकिन अच्छी बात यह है कि तमाम सारी सामग्री इन्टरनेट पर उपलब्ध है.

होशंगाबाद प्रयोग को भी बंद कर दिया गया. और भाजपा को तो यह शुरू से ही नापसंद था.

लेकिन कांग्रेस सरकार ने दिग्विजय सिंह के नेतृत्व में इसे बंद किया था. कई लोग कहते हैं कि ऐसा करके कांग्रेस ने अपने ही पांव में कुल्हाड़ी मार ली थी.

होशंगाबाद प्रोजेक्ट ने ओपन बुक टेस्ट जैसी चीज़ें शुरू की थीं, जिसमें हम बच्चों की रटने की क्षमता की परीक्षा नहीं लेते थे बल्कि अवधारणा की समझ की परख करते थे. लोगों को यह पसंद नहीं था. उन्होंने एकलव्य पर नक़ल को बढ़ावा देने का आरोप लगाया. एकलव्य भी इस तरह के बड़े प्रयोग के लिए परिपक्व नहीं था. ऐसे कामों के लिए अच्छे जन संपर्क तंत्र की ज़रूरत पड़ती है, जो उसके पास नहीं था. आपको तमाम तरह के राजनीतिक खेमों और विचारों को साथ लेकर चलना होता है.

इस सरकार के हिसाब से सम्मान के लिए आप अप्रत्याशित उम्मीदार प्रतीत होते हैं. खास तौर पर अगर विज्ञान शिक्षा के आपके नज़रिए को या उन लोगों को देखें जिनके साथ आपने काम किया या जिनसे आप प्रभावित हुए?

मैंने कभी पद्म सम्मानों का हिसाब नहीं रखा. लेकिन प्रधानमंत्री ने अपने मन की बात में कहा कि सूची में कई लोग ऐसे हैं जिन्हें कभी सुना नहीं गया और सरकार ने काम को तवज्जो दी है, नाम को नहीं. शायद मैं इस छोटी सी सूची में भी आ गया. लेकिन इस सम्मान ने मुझे ख़ुशी दी.

2014 में सेवानिवृत्त होने के बाद आप क्या कर रहे हैं?

मैं बच्चों की किताबों का अनुवाद करता हूं. मैं इन किताबों से चमत्कृत रहता हूँ. पिछले साल मैंने असामान्य बच्चों के लिए 35 किताबों का अनुवाद किया. 40 पृष्ठों वाली ये सुन्दर सचित्र किताबें हैं जिनके 70% हिस्से में चित्र बने हुए हैं. मैं दो दिन में एक किताब का अनुवाद कर लेता हूं. पिछले साल मैंने 170 किताबों का हिंदी में अनुवाद किया और अपनी वेबसाइट के आर्काइव में डाल दिया. एक दिन हम सब जीवित नहीं रहेंगे लेकिन आने वाली पीढ़ियों के लिए हमें थोड़ी बेहतर दुनिया ज़रूर छोड़नी चाहिए.

(अनुवाद: आशुतोष उपाध्याय)